^dk'kh dk vLlh* e lLÑfr dk Lo:i

egkRek xkèkh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;
dh

,e- fQy- fgnh ¼ryukRed lkfgR;½ mikfèk gr iLrr
y?k 'kkèk&icèk

'kkèk&fun'kd
Mk-#i'k dekj flg
lgk;d ikQlj
lkfgR; foHkkx
e-xk-v-fg-fo-fo-] oèkk

'kkèkkFkh
?ku';ke dekj
lkfgR; foHkkx
e-xk-v-fg-fo-fo-] oèkk

›

lkfgR; foHkkx

¼lkfgR; fo|kihB½

egkRek xkèkh vUrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;

¼lln }kjk ikfjr vfèkfu;e 1997] Øekd 3 d vrxr LFkkfir dnh; fo'ofo|ky;½
ikLV % fgnh fo'ofo|ky;] xkèkh fgYl] oèkk&442005
¼egkjk"V½ Hkkjr

2012&2013

भूमिका

संस्कृति का स्वरुप हर जगह एक जैसा नहीं होता, स्थान और समय के अनुसार संस्कृति में बदलाव होता रहता है। संस्कृति का जो स्वरुप बिहार में होगा, वह बनारस में नहीं होगा। संस्कृति की निर्मित में भौगोलिक सीमाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्कृति जीने का एक तरीका है और तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।

किसी देश की मूल संस्कृति उस देश की लोक संस्कृति को माना जाता है। इससे उस देश की विरासत का पता चलता है। काशी की संस्कृति ने अपने अंदर समय के साथ अनेक सांस्कृतियों को समाहित किया है। यह निरन्तर विकासशील संस्कृति रही है। उसकी निरन्तरता का मुख्य कारण धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय की शक्ति तथा अनेकता में एकता की प्रवृत्ति रही है। यहाँ का अस्सी घाट धर्म व संस्कृति में अपनी व्यवस्था के लिए विख्यात है। अस्सी का लोक जीवन सबसे अलग है। वैमनस्य, कटुता, जातिगत विभाजन के रहते हुए भी सामूहिकता खत्म नहीं होती। काशी अपने बेलौस औघड़पन के लिए मशहूर रहा है। बात-व्यवहार, रहन-सहन, चाल-ढाल में हर बनारसी में अलमस्त मिजाज की झलक देखने को मिलती है। यही कबीर की भूमि है, यही औघड़ सम्राट बाबा कीनाराम की कर्मस्थली है। उनकी विरासत यहाँ के हर आदमी के खून में है। वही मिजाज, वही अक्खड़पन, वही बेढब चाल, वही राग-रस-रंग।

लेखक काशीनाथ सिंह लिखित उपन्यास 'काशी का अस्सी' के बारे में मुझे उस समय पता चला जब मैं 2009 में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए.की पढ़ाई कर रहा था। उपन्यास 'काशी का अस्सी' हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में मैला आंचल, राग दरबारी जैसे उपन्यासों की तरह मिलता जुलता उपन्यास है। इस उपन्यास के सभी पात्र जीवंत हैं तथा उपन्यास में जो भी घटनाएँ घटित हो रही हैं वह 'आँखों देखा हाल' जैसा लगता है। बनारस की लोक संस्कृति विश्वविख्यात है | इसे देखने व समझने के लिए दूर-दूर से लोग आते रहते हैं। कुछ तो प्रभावित होकर बनारस के ही होकर रह जाते हैं।

1980 के बाद भ्रष्ट राजनीति तथा सरकार के गलत नियमों के कारण भारत में वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ, इस वैश्वीकरण से आज भारततीय समाज की सामूहिकता टूटती जा रही है, देश का हर नागरिक उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार बना है। प्रेम व बन्धुत्व की भावनाएँ समाप्त हो रही हैं। व्यक्ति का रहन-सहन सामूहिकता की जगह टेलीविजन व विज्ञापनों ने ले लिया। इन्हीं सभी समस्याओं को लेकर मैंने इस उपन्यास पर एम.फिल में शोध कार्य का मन बनाया।

उपन्यास 'काशी का अस्सी' समाज व संस्कृति में आ रहे बदलाव व परिवर्तन की कहानी है। जहाँ से जीवन की हलचलें अंधी दौड़ के साथ शुरू हो जाती हैं। यहाँ जीवन के रहस्य इस तरह खुलते हैं कि सत्ता के भीतर-बाहर के सच पप्पू की दुकान के साथ खुलते और बन्द होते हैं। यह उपन्यास ऊपर से हँसता है, गुदगुदाता है और भीतर ही भीतर गहरी यातना व पीड़ा के बोध

का अहसास कराता है। पूरे उपन्यास में 'काशी का अस्सी' उस सच को प्रस्तुत करता है जो लगातार टूट-फूट के साथ परिवर्तित हो रहे दौर से गुजरते हुए भी बहुत कुछ वैसा का वैसा बना रहता है जैसा वह है। यह उपन्यास मात्र घटनाओं का संग्रह न होकर जीवंत दस्तावेज है।

इस लघु शोध प्रबंध को कुल तीन अध्याय में विभाजित किया गया है। जिसका प्रथम अध्याय संस्कृति और लोक संस्कृति से संबंधित है। जिसमें संस्कृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसके लिए दी गईं विभिन्न परिभाषाओं पर विचार किया गया है, साथ ही लोक संस्कृति को भी विश्लेषित किया गया है |

दूसरा अध्याय अस्सी की संस्कृति पर केंद्रित है। जिसमें काशी की संस्कृति के बारे में तथा उसके महत्व व पहचान पर चर्चा की गई है। काशी एक धर्म नगरी के रूप में विख्यात है | उसकी संस्कृति में किस तरह से धार्मिकता का महत्व है और उसमें समय के साथ कौन सी नई चीजें सामिल हुईं। इसको लक्ष्य करके विश्लेषण परक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काशी की संस्कृति लोक संस्कृति के अंतर्गत आती है। काशी व अस्सी का लोक जीवन मस्ती व फक्कड़पन जैसा है, वह अस्सी की संस्कृति में सामूहिकता को खत्म नहीं होने देता। इस स्थान पर कोई जातिगत भेद नहीं, सब-के सब गुरू यानी सामुदायिकता और आनंद का दस्तावेज है। अस्सी चौराहे से पप्पू के चाय की दुकान तक मस्ती व अड्डेबाजी के माध्यम से वहाँ के लोक-जीवन को दिखाया गया है। अस्सी का फक्कड़पन और औघड़पन वहाँ के मस्तमौला और खुशमिजाजी जीवन को दर्शता है। अस्सी की भाषा भी वहाँ की संस्कृति के अनुकूल है। व्यंग्य का पैनापन भाषा की जान है। तीसरा अध्याय अस्सी की संस्कृति पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव है। जिसके अन्तर्गत भ्रष्ट राजनैतिक लोकतंत्र व साम्प्रदायिकता के द्वारा-देश में जातिगत राजनीति और धार्मिक पाखंड का विवेचन किया गया है। बनारस जब अस्सी स्थित पप्पू के चाय की दूकान पर गप्पेबाजी में गुजार रहा था, तब विदेशी कंपनियाँ व संस्कृति धीरे-धीरे काशी व पूरे भारत देश में घुसना शुरू कर दिया था। अस्सी के ऊपर संकट तब गहरा हुआ जब सर्वथा नवीन किस्म की चुनौतियों से लड़ना पड़ा। भूमण्डलीकरण ने कई स्तरों पर भारतीय समाज को प्रभावित किया है। विभिन्न समुदाय, परिवार, लिंग और हमारी पुरानी परंपराओं पर बुरा असर पड़ा। परिवार एकल बनता जा रहा है समुदाय टूट रहा है। अस्सी का जन-जीवन पहले जैसा नहीं रहा, अब वह भूमण्डलीकरण के चपेट में आ चुका है। अस्सी के माध्यम से भूमण्डलीकरण का प्रभाव, समूचे भारत देश के यथार्थ चित्रण को प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त तीन स्वतंत्र अध्यायों के अतिरिक्त कुछ पृष्ठों का उपसंहार है। जिसमें प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध के निष्कर्ष को दिया गया है। इस शोध विषय से संबंधित जिन सामग्रियों और पुस्तकों की सहायता ली गया उनका नाम, प्रकाशन वर्ष तथा प्रकाशन के साथ पूरा पता दिया गया है।

इस लघु-शोध-प्रबंध को पूरा करने में जिन विद्वानों की सामग्री का मैंने प्रयोग किया सबसे पहले उनको धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। मेरे शोध डॉ. रुपेश कुमार सिंह ने शोध कार्य के दौरान मुझे लगातार मानसिक बल के साथ प्रत्येक स्तर पर सहायता प्रदान की, अत: उनके प्रति विशेष

आभारी हूँ। विषय चयन में हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के अध्यक्ष प्रो. गोपेश्वर सिंह ने मेरी सहायता की। साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता, प्रो. सूरज पालीवाल एवं साहित्य विभाग के अध्यक्ष प्रो. कृष्ण कुमार सिंह जी से मुझे लगातार प्रोत्साहन मिला। कथाकार काशीनाथ सिंह जी तथा संजीव जी से हुई बात-चीत से मैं काफी लाभान्वित हुआ। बनास पत्रिका के संपादक डॉ. पल्लव जी ने शोध विषय से संबंधित पुस्तके और सामग्रियाँ उपलब्ध कराई, जिससे मैं समय पर शोध कार्य पूर्ण कर सका। बादली विधान सभा के विधायक माननीय श्री देवेन्द्र यादव (मंत्री, दिल्ली सरकार), श्रीमती विमला गुलाटी (सेवानिवृत्त प्राध्यापिका, शिक्षा निर्देशालय, दिल्ली), श्री वीरेन्द्र कुमार मकर एवं उनकी पुत्री वैशाली भारद्वाज (आरुषी एन.जी.ओ. कीर्ति नगर, दिल्ली), समाज सेवी श्री सुखवीर चंद गर्ग तथा मेरे प्रिय मित्र राजपाल यादव, रवि प्रताप सिंह तथा सहपाठी भावना सरोहा, तृप्ति मित्तल के लगातार मैं सम्पर्क में रहा और सभी ने यथा-संभव सहायता प्रदान की। अत: मैं इन सब के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

अंत में मैं अपनी दादी श्रीमती उर्मिला देवी तथा दादा श्री रघुवीर साह, माता श्रीमती गीता देवी एवं पिता श्री राम पुकार साह सहित परिवार के सभी सदस्यों को यह लघु शोध प्रबंध समर्पित करता हूँ |

दिनाकं-

स्थान-

घनश्याम कुमार

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

अध्याय-एक : संस्कृति और लोक संस्कृति

1.1 : संस्कृति, अर्थ और परिभाषा 03-06

1.2 : लोक संस्कृति, अर्थ और परिभाषा 07-10

अध्याय-दो : उपन्यास में चित्रित अस्सी की संस्कृति

2.1 : काशी की संस्कृति में अस्सी 12-19

2.2 : मस्ती फक्कड़पन और औघड़ संस्कृति 20-26

2.3 : व्यंग्य प्रधान भाषा 27-34

अध्याय-तीन : अस्सी की संस्कृति पर भूमण्डलकीकरण का प्रभाव

3.1 : भ्रष्ट राजनैतिक लोकतंत्र व साम्प्रदायिकता 36-46

3.2 : धार्मिक पाखण्ड को बढ़ावा 47-54 3.3

: लोकजीवन में परिवर्तन 55-62 3.4 :

उपभोक्ता केन्द्रित संस्कृति और टूटता परिवार **6**3-81

उपसंहार

83-87

सहायक ग्रंथ सूची

उपसंहार

प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है जिसके द्वारा वह अन्य समाजों से भिन्न अपनी अलग पहचान रखता है | यह मानव निर्मित होती है। संस्कृति को व्याख्यायित करने में हम समाज के विचार और व्यवहार को लक्षित करते हैं तथा उसके आधार पर उन नियमों और सिद्धांतों को शाब्दिक रुप देने का यत्न करते हैं। संस्कृति शरीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। संस्कृति ऐसी चीज नहीं कि जिसकी रचना दस-बीस या सौ-हजार वर्षों में की जा सकती हो। समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते, रहते, सोचते-समझते तथा राज-काज चलाने के साथ धर्म का पालन करते हैं, उन सभी कार्यों से उनकी संस्कृति का सीधा संबंध होता है। हमारे समाज में संस्कृति या संस्कार शरीर का नहीं आत्मा का गुण है, सभ्यता की वस्तु से हमारा संबंध शरीर के साथ ही छूट जाता है जबकि संस्कृति का प्रभाव हमारी आत्मा के साथ जन्म-जन्मांतर तक चलता रहता है।

भारत की संस्कृति में विश्व की तमाम सांस्कृतियाँ आकर समाहित हो गईं। भारत की संस्कृति आरम्भ से ही समन्वयवादी रही है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व- पश्चिम, देश में जहाँ भी जो लोग बसते हैं उनकी संस्कृति एक है यद्यपि क्षेत्रीय विशेषताएँ उनमें अवश्य पाई जाती हैं। समन्वय की यह प्रक्रिया कई सौ वर्ष पहले से प्रारंभ हो गई थी। आजादी की लड़ाई के दौरान इसमें और मजबूती आई। भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी समन्वयवादी संस्कृति की विशेषता है। वैदकि काल से अब तक हमारी संस्कृति में बहुत कुछ परिवर्तन हुए हैं, बहुत कुछ मोड़ आये हैं, परन्तु धारा वही है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के आलोक में तो हम यही पाते हैं कि जनजीवन तथा लोक संस्कृति से ही शिष्ट संस्कार होता आया है। किसी देश की मूल संस्कृति उस देश की लोक संस्कृति ही है। भारतीय लोक संस्कृति गतिशील है। इसकी गतिशीलता का अर्थ है पूर्ववर्ती युगों के सकारात्मक लोक संस्कृति रूपों का संरक्षण और विकास। लोक संस्कृति उभरेगी तो लोक की बौद्धिक-भौतिक ताकत में भी उभार आएगा। लोक संस्कृति मजबूत होगी तो लोक मजबूत होगा। लोक मजबूत होगा तो हमारी संस्कृति भी मजबूत होगी। विश्व के प्राचीनतम सांस्कृतिक नगरों में काशी का स्थान सर्वोपरि है। इस नगर की तुलना रोम, जेरूशलम तथा मक्का जैसे पवित्र प्राचीन नगरों से की जाती है। विश्व के अधिकांश प्राचीन नगर और उनकी संस्कृतियाँ काल के प्रवाह में नष्ट हो गईं किन्तु काशी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का प्रवाह वैदिक काल से लेकर आज तक उसी वेग से प्रवाहमान है। काशी का प्राय: हर व्यक्ति दार्शनिक है। यहाँ की धार्मिक परम्परा में जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मों के साथ ही यक्ष, नाग एवं प्रकृति पूजन की परम्परा देखी जा सकती है। इस सांस्कृतिक निरन्तरता के मूल में यहाँ की धार्मिक सांस्कृतिक समन्वय की प्रवृति रही है। जो अब भारतीय संस्कृति की विशेषता बन चुकी है। काशी में विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव और परस्परता का मूल कारण गंगा के तट पर उनकी स्थिति रही है। गंगा के किनारे होने के कारण काशी का धार्मिक महत्व

अधिक बढ़ जाता है। यहाँ गंगा तट पर कई घाट बने हैं। जिनमें घाटों का राजा अस्सी घाट, अपने धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के लिए के लिए प्रसिद्ध है। अस्सी की इस पंचकोसी परिक्रमा में जो मस्ती और मजा है, वह न पेरिस में है, न फारस में। माथे पर चंदन की बिंदी, मुँह में पान और तोंद सहलाता हाथ। न किसी के आगे गिड़गिड़ाना न हाथ फैलाना। यह दर्शन है यहाँ का। अस्सी अपनी व्यवस्था के लिए विख्यात है।

अस्सी का लोक जीवन सबसे अलग है। यहाँ पर वैमनस्य, कटुता, जातिगत, विभाजन के रहते हुए भी अस्सी अपनी सामुहिकता को खत्म नहीं होने देता। सन अस्सी के पहले का 'अस्सी' है, बनारस। जहाँ भाँग की संस्कृति है और कवि सम्मेलन की परम्परा। भाँग अकेले नहीं खायी जाती है। भाँग घोटने से लेकर उसके छानने तथा साथ पीने में लोक का अद्‌भुत रंग है। यह एक सामूहिकता है। अस्सी के लोग आपस में बातें गालियाँ भरे शब्दों से करते है। गालियाँ यहाँ की भाषा में लोगों का प्यार है। अस्सी पर पप्पू के चाय की दूकान अड्डा संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। अस्सी के निवासी यहीं पर आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक विषयों पर बेधड़क चर्चा करते हैं। पप्पू की चाय दूकान पर सिर्फ मस्ती भर नहीं होता हैं, इस दूकान पर पूरा विश्व दिखाई पड़ता है। अस्सी अष्टाध्यायी है और काशी इसका भाष्य। कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ, अस्सी का यूनीफार्म है। गुरु यहाँ कि नागरिकता का सरनेम है। अस्सी का राग इस देश का वह राग है जिसमें हर तरह के षड़यंत्र, घुटन और दम तोड़ू व्यवस्था के बीच खिलखिलाते हुए आम आदमनी की संघर्ष को आगे बढ़ाया गया है।

काशी नाथ सिंह की रचना 'काशी का अस्सी' एक ऐसी औपन्यासिक कृति है जिसमें अस्सी चौराहे पर पप्पू के चाय की दूकान कई संस्कृतियों की ग्राहक बनती है। पूर्वांचल एवं बिहार की संस्कृति तथा राजनीति चाय के साथ उपस्थित होती है। बनारस शहर होते हुए भी गाँव है। जहाँ-जहाँ लोक भावनाओं और संवेदनाओं का घनीभूत रुप देखा जा सकता है।

उपन्यास अपने समय का प्रामाणिक दस्तावेज है सिर्फ घटनाओं के अंकन की दृष्टि से ही नहीं बल्कि समूचे उपन्यास में अपने समय की वैज्ञानिक दृष्टि से की गई पड़ताल और सुविचारित टिप्पणी महत्वपूर्ण है। आज की और उपन्यास में चित्रित अस्सी की त्रासदी का मूल समय का अप्रत्याशित बदलाव हैं और इस बदलाव में भूमंडलीकरण की तेज आँधी है। ऐसे सर्वग्रासी समय की इस रचना में भूमंडलीकरण के विघटनकारी प्रभावों के प्रतिरोध का स्वर स्पष्ट है। प्रतिरोध उस प्रतिसंस्कृति का जिसने अस्सी की आजादी में खलल डाला है। काशी का अस्सी अपने समूचे कलेवर में अपने समय का दस्तावेज है, जहाँ हर तरफ बाजार और बाजार की नीति के साथ राजनीति है।

काशीनाथ सिंह जी ने भदेसपन की हद तक फैली फक्कड़मिजाजी की औघड़-भाषा को स्वयं अपने संषर्घों और लोक जीवन के अनुभव से अर्जित किया है। अस्सी की धुरी पर दिन और दृश्य के साथ पात्र बदलते रहे पर अस्सी महानायक की तरह वहीं है। अपनी औघड़ संस्कृति वाला फक्कड़-अस्सी। काशी का अस्सी मुहल्ला में वैश्वीकरण और बाजारवाद के कारण पहनावे में जनेऊ या लंगोट को भले ही बिगाड़ा हो लेकिन अभी भी गमछा अपनी जगह आडिग है। यह

स्थानीयता ही देश का निर्माण करती है, आज भी यह अलग संस्कृति व पहचान को अपने भीतर समेट कर रखती है। इसी के सहारे तो आम आदमी और यह देश जिन्दा है। वह सब कुछ गवाँ सकता है लेकिन जो इसकी पहचान है उसे नहीं। इस चौराहे पर जो भी आत्माएँ आती हैं वे हर परिवर्तन को स्वीकार-अस्वीकार करते हुए भी अपने पहचान के लिए सजग है और अपनी पहचान को बनाये रखती है। आम आदमी के साथ उसकी दुनिया आगे-आगे चलती रहती है। कभी आम आदमी का राग खत्म नहीं होता।

उपन्यासकार अस्सी को औघड़ संस्कृति की जायज-नाजायज संतान कहता है। करपात्री और बाबा तुलसीदास के संबंध में उछाले गए नारों और मनगढ़ंत कहानियों से सिद्ध होता है कि अस्सी के निवासी औघड़ संस्कृति की नाजायज संतान हैं। वस्तुत: यह न करपात्री के विरुद्ध है औरन तुलसीदास के। इससे अस्सी का चरित्र उजागर होता है। जब कभी वह कहता है- 'वह भी कोई आदमी है जो फिसले नहीं, गिरे नहीं, धक्के न खाए, जलील न हो' तो तथा कथित आदर्श के औचित्य पर ही चोट नहीं पड़ती बल्कि आधुनिक मनुष्य के चरत्रि का एक महत्वपूर्ण पहलू भी उभरता है। यह औघड़ संस्कृति की जायज संतान का कथन है।

'काशी का अस्सी' को राजनैतिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता, यद्यपि राजनैतिक कहना इसे सरलीकृत बनाना है, इसी जटिल संरचना को सपाटबयानी में बदल देना है। जीवन राजनीति से बहुत बड़ा होता है। निरगुन उसी का अंग है। भारतीय संस्कृति से वह अनिवार्यत: जुड़ा हुआ है। इसमें भी नेता, नेतागिरी और राजनीति की भरपूर ऐसी की तैसी की गई है। आदर्श उच्चतम रखो लेकिन जियो निम्नतम। एक टिप्पणी है- 'भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए ऑक्सीजन है।' समय-समय पर इस टिप्पणियों के माध्यम से उपन्यासकार तत्कालीन राजनीति की कलई खोल कर रख देता है। 1998 का चुनाव जाति-पांत के मेले की तरह था। उपन्यास में सभी जातियों अहीर, कुर्मी, चमार आदि पर टिप्पणियां की गईं हैं। चुनाव का कच्चा चिट्ठा नारों में खुलता है -पी लो पाउच, भर लो पेट। फिर न मिलेगे जवाहर सेठ।'...पाउच नहीं, दूध चाहिए। दूध चाहिए। बनिया नहीं अहीर चाहिए। इन नारों को तत्कालीन चुनाव प्रचारों से जस-का-तस उठान लिया गया है। जिस जाति व्यवस्था से मुक्ति के लिए, लम्बे समय से राष्ट्र मानव चेतना सम्पन्न बौद्धिक संघर्ष कर रहे थे। उसी जाति के सहारे भारतीय राजनेता अपनी और पार्टी की नाव पार लगाने लगे। यह लोकतंत्र का भारतीय स्वरुप है और राष्ट्रीय चेतना का विद्रूप। इस दृष्टि से अस्सी अपनी स्थानीयता त्यागकर पूरे देश की राजनीति का शो-रुप बन जाता है।

'काशी का अस्सी' में राजनैतिक सत्ता के बरक्स लोक है। इस उपन्यास का सौन्दर्य एवं संदेश इसके इसी द्वंद्व में है। सत्ता का अभिप्राय यहाँ राजनीतिक सत्ता मात्र से नहीं है। राजनीति सत्ता, सत्ता का एक रूप है। भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास को पलटे तो

आजादी के बाद भारत में वर्षों तक परिवर्तन होते रहे। मंडल कमीशन के द्वारा लायी गयी आरक्षण व्यवस्था समाज को दो खेमों में बाट दिया। राजनीतिक स्वार्थ में धर्म को लेकर सांप्रदायिकता इतनी अधिक फैल गई कि मंदिर आंदोलन की आड़ में गाँवों व शहरों की जमीने हथियाना शुरू हो गया। लोकतंत्र में अफवाहों का पूरा तंत्र भी खड़ा किया गया, क्योंकि कोई भी सांप्रदायिकत उत्तेजना पैदा करने में अफवाहें ही चिंगारी का काम करती हैं। भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था ऐसा फैक्टर है कि इसे तोड़ने के लिए प्रत्येक क्रांतिधर्मी अपनी-अपनी तरह से टकराता रहा। जिस जाति व्यवस्था से मुक्ति के लिए, लम्बे समय से राष्ट्र और मानव चेतना सम्पन्न बौद्धिक संघर्ष कर रहे थे। उसी जाति के सहारे भारतीय राजनेता अपनी और पार्टी की नाव पार लगाने लगे। 1989 में राम मंदिर का शिलान्यास और इसके लिए पूरी दुनिया से एकत्र छिन्न-भिन्न करने की मुहिम की शुरूआत थी। 'काशी का अस्सी' बीते दो-ढाई दशकों में भारत में हुए सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की दास्तान है।

देश काल परिस्थिति अनुसार परंपराओं में संशोधन, परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच अन्तर्द्वन्द्व हमेशा ही देखने को मिलता है। आर्थिक वर्चस्वकारी शक्तियाँ अपने लिए जमीन तैयार करने के उद्देश्य से अपनी आक्रमण सांस्कृतिक पैटर्न का सहारा लेती हैं। उन्नत राष्ट्र अपने हर अपशिष्ट को पिछले एवं विकासशील राष्ट्र पर थोप रहा है। उसका आक्रमण दोहरा है, पश्चिमी समाज सांस्कृतिक कुतुहल के साथ आता है और अपनी विकृति थोप जाता है। भूमण्डलीकरण स्वरुप अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक प्रक्रिया न होकर पश्चिमी उत्पाद, संस्कृति एवं मूल्य के वर्चस्व की प्रक्रिया है। वह पूरी दुनिया को अपना चारागाह बनाता है। जब भारत में भूमण्डलीकरण का दौर शुरू हुआ तो अस्सीवालों ने मौज लेने के लिए पैसा कमाना शुरू किया। विज्ञापन ने ऐसी-ऐसी चमक दिखाई, ऐसे-ऐसे सपने दिखाये कि अपने को रोकना नामुमकिन जैसा हो गया। लोगों को यह रंगीन दुनिया पंसद आयी। अस्सी पर इस विकास ने अपना दामन क्या फैलाया, हँसी गायब हो गयी।

अस्सी का संकट बढ़ता गया। सब कुछ परिवर्तन होने लगा। खाने-पीने वालों ने, जीने-खाने वालों को हासिये पर धकेलना शुरू किया। अस्सी पर भीड़ बढ़ती गई लेकिन आदमी घटते गये। सब व्यस्त, सब परेशान। वैश्विक परिवर्तन सिर्फ व्यक्ति के रहन-सहन, खान-पान में नहीं होता बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में होता है। आज बाजार न केवल हमारे गाँव-घर-शहर को लूट रहा है बल्कि पूरे देश में वैश्विक शक्तियाँ हावी हैं। दुनिया में उपभोक्तावाद की शुरूआत भारतीय सूती कपड़े और मलमल से हुई, जो 17वीं सदी के आखिरी दशक में किसी समय इंग्लैण्ड पहुँची। उपभोग की इच्छा के पीछे सुखवाद है। मनुष्य की इच्छाएँ केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रह सकतीं जो जीवन को संभव बनाती हैं। जीवन का आनंद भी एक जरूरी तत्व है। संस्कृति के उद्योग बनने का सिलसिला 19वीं सदी से शुरू हुआ था। सन् 1984-85 के आस-पास भारतीय जन-जीवन में टी.वी. ने दबे पाँव प्रवेश किया और इसी के साथ सारी दुनिया को एक बड़े समुदाय में बदलने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

आज विज्ञापन हमारी सभ्यता संस्कृति के निर्माता हो गए हैं। वर्तमान संस्कृति उद्योग वस्तुत: आदमी को संस्कृतिहीन करने का उद्योग है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रस्थान किसी रंगीन बाढ़ में बहते जाना है। विज्ञापन का समाज पश्चिमी उपभोक्तावादी जीवन शैली और सोच के प्रति लोगों का सम्मान बढ़ रहा है। भूमण्डलीकरण से व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा उपयोग की वस्तुओं से लाभ मिला है, वहीं पर लोगों के अंदर उपभोक्तावादी संस्कृति इतनी हावी हो गई हैं कि वह केवल खुद के बारे में सोचता है। आज के उपभोक्ता संस्कृति में जिस तरह आदमी चाय को पीकर कप या नाश्ता कर प्लेट फेंक देने की आदत पड़ गई है, वह आदमी मित्र, साधी, पत्नी, माँ-बारप सबको फेंकने को आदी हो गया है। भूमण्डलीकरण के कारण अब समाज में लोगों के बीच न कोई समुदाय है और न प्रेम बन्धुत्व की भावना। पारिवारिक रिश्ते में भी खटास पड़ने लगी है। अब अस्सी हँसी मजाक का केन्द्र नहीं रहा, सब कुछ वैश्विक बाजारों ने नष्ट कर दिया।

अस्सी का जीवन दरअसल एक पारंपरिक समाज के आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरण का जीवंत दस्तावेज है। अस्सी चौराहे से उपन्यास में उपन्यासकार काशीनाथ सिंह उपभोक्ता संस्कृति, दिखावे और बाजारूपन के खिलाफ एक सशक्त आवाज उठाता है। पूरे भारत वर्ष में भूमण्डलीकरण हो चुका, सब कुछ बदल गया, भारतीय संस्कृति अब इतिहास हो गयी और एक नई उपभोक्ता संस्कृति का उदय हुआ। 'जब सुबह हुई और कथा पूरी हुई तो हम थे, इक्कीसवीं सदी थी और आदमी का लहूलुहान धड़ था...।'

----------000----------